गधो पर उलटा सवार कराके शहर से निकाल दें। जवानी और बुढ़ापे को न जाने क्यों लोग अवस्था से

सम्बद्ध कर देते हैं। जवानी का उम्र से उतना ही सम्बन्ध है; जितना धर्म का आचार से, रुपये का ईमानदारी से, रूप का श्रृंगार से। आजकल के जवानों को आप जवान कहते हैं ? उनकी एक हजार जवानियों को अपने एक घंटे से भी न बदलूँगा। मालूम होता है उनकी जिन्दगी में कोई उत्साह ही नहीं, कोई शौक नहीं। जीवन क्या है, गले में पड़ा हुआ एक ढोल है। यही शब्द घटा-बढ़ाकर वे आशा के हृदय-पटल पर अंकित करते रहे थे। उससे बराबर सिनेमा, थियेटर और दरिया की सैर के लिए आग्रह करते रहते। लेकिन आशा को न-जाने क्यों इन बातों में जरा भी रुचि न थी। वह जाती तो थी, मगर बहुत टाल-टूट करने के बाद। एक दिन लालाजी ने आकर कहा, चलो, 'आज बजरे पर दरिया की सैर करें।'

वर्षा के दिन थे, दरिया चढ़ा हुआ था, मेघ-मालाएँ अन्तरराष्ट्रीय सेनाओं की भाँति रंग-बिरंगी वर्दियाँ पहने आकाश में कवायद कर रही थीं। सड़क पर लोग मलार और बारहमासा गाते चलते थे। बागों में झूले पड़ गये थे। आशा ने बेदिली से कहा, 'मेरा जी तो नहीं चाहता।' लालाजी ने मृदु प्रेरणा के साथ कहा, 'तुम्हारा मन कैसा है जो आमोद-प्रमोद की ओर आकर्षित नहीं होता ? चलो, जरा दरिया की सैर देखो। सच कहता हूँ, बजरे पर बड़ी बहार रहेगी।'

'आप जायँ। मुझे और कई काम करने हैं।'

'काम करने को आदमी हैं। तुम क्यों काम करोगी ?'

'महाराज अच्छे सालन नहीं पकाता। आप खाने बैठेंगे तो यों ही उठ जायँगे।'

आशा अपने अवकाश का बड़ा भाग लालाजी के लिए तरह-तरह का भोजन पकाने में ही लगाती थी। उसने किसी से सुन रखा था कि एक विशेष अवस्था के बाद पुरुष के जीवन का सबसे बड़ा सुख, रसना का स्वाद ही रह जाता है। लालाजी की आत्मा खिल उठी। उन्होंने सोचा कि आशा को उनसे कितना प्रेम है कि वह दरिया की सैर को उनकी सेवा के लिए छोड़ रही है। एक लीला थी कि 'मान-न-मान' चलने को तैयार रहती थी। पीछा छुड़ना पड़ता था, ख्वामख्वाह सिर पर सवार हो जाती थी और सारा मजा किरकिरा कर देती थी।

स्नेह-भरे उलाहने से बोले, 'तुम्हारा मन भी विचित्र है। अगर एक दिन सालन फीका ही रहा, ऐसा क्या तूफान आ जायगा ? तुम तो मुझे बिलकुल निकम्मा बनाये देती हो। अगर तुम न चलोगी, तो मैं भी न जाऊँगा।

आशा ने जैसे गले से फन्दा छुड़ाते हुए कहा, 'आप भी तो मुझे इधर-उधर घुमा-घुमाकर मेरा मिजाज बिगाड़ देते हैं। यह आदत पड़ जायगी, तो घर का धन्धा कौन करेगा ?

'मुझे घर के धन्धों की रत्ती-भर भी परवा नहीं बाल की नोक बराबर भी नहीं। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा मिजाज बिगड़े और तुम गृहस्थी की चक्की से दूर रहो और तुम मुझे बार-बार आप क्यों कहती हो ? मैं चाहता हूँ, तुम मुझे तुम कहो, तू कहो, गालियाँ दो, धौल जमाओ। तुम तो मुझे आप कहके जैसे देवता के सिंहासन पर बैठा देती हो ! मैं अपने घर में देवता नहीं, चंचल बालक बनना चाहता हूँ।'

आशा ने मुस्कराने की चेष्टा करके कहा, %भला, मैं आपको 'तुम' कहूँगी। तुम बराबर वाले को कहा, जाता है कि बड़ों को ?'

मुनीम ने एक लाख के घाटे की खबर सुनायी होती, तो भी शायद लालाजी को इतना दुःख न होता, जितना आशा के इन कठोर शब्दों से हुआ। उनका सारा उत्साह, सारा उल्लास जैसे ठंडा पड़ गया। सिर पर बाँकी रखी हुई फूलदार टोपी, गले में पड़ी हुई जोगिये रंग की चुनी हुई रेशमी चादर, वह तंजेब का बेलदार कुर्ता, जिसमें सोने के बटन लगे हुए थे यह सारा ठाठ कैसे उन्हें हास्यजनक जान पड़ने लगा, जैसे वह सारा नशा किसी मन्त्र से उतर गया हो। निराश होकर बोले, 'तो तुम्हें चलना है या नहीं।'

'मेरा जी नहीं चाहता।'

'तो मैं भी न जाऊँ ?'

'मैं आपको कब मना करती हूँ ?'

'फिर 'आप' कहा, ?'

आशा ने जैसे भीतर से जोर लगाकर कहा, 'तुम' और उसका मुखमण्डल लज्जा से आरक्त हो गया।

'हाँ, इसी तरह 'तुम' कहा, करो। तो तुम नहीं चल रही हो ? अगर मैं कहूँ, तुम्हें चलना पड़ेगा ?'

'तब चलूँगी। आपकी आज्ञा मानना मेरा धर्म है।'

लालाजी आज्ञा न दे सके। आज्ञा और धर्म जैसे शब्द उनके कानों में चुभने-से लगे। खिसियाये हुए बाहर को चल पड़े; उस वक्त आशा को उन पर दया आ गयी। बोली, 'तो कब तक लौटोगे ?'

'मैं नहीं जा रहा हूँ।'

'अच्छा, तो मैं भी चलती हूँ।'

जैसे कोई जिद्दी लड़का रोने के बाद अपनी इच्छित वस्तु पाकर उसे पैरों से ठुकरा देता है, उसी तरह लालाजी ने मुँह बनाकर कहा, 'तुम्हारा जी नहीं करता, तो न चलो। मैं आग्रह नहीं करता।'

'आप नहीं, तुम बुरा मान जाओगे।'

आशा गयी, लेकिन उमंग से नहीं। जिस मामूली वेश में थी, उसी तरह चल खड़ी हुई। न कोई सजीली साड़ी, न जड़ाऊ गहने, न कोई सिंगार, जैसे कोई विधवा हो। ऐसी ही बातों पर लालाजी मन में झुँझला उठते थे। ब्याह किया था, जीवन का आनन्द उठाने के लिए, झिलमिलाते हुए दीपक में तेल डालकर उसे और चटक करने के लिए। अगर दीपक का प्रकाश तेज न हुआ, तो तेल डालने से लाभ न-जाने इसका मन क्यों इतना शुष्क और नीरस है, जैसे कोई ऊसर का पेड़ हो, कितना ही पानी डालो, उसमें हरी पत्तियों के दर्शन न होंगे। जड़ाऊ गहनों से भरी पेटारियाँ खुली हुई हैं, कहाँ-कहाँ से मँगवाये दिल्ली से, कलकत्ते से। कैसी-कैसी बहुमूल्य साड़ियाँ रखी हुई हैं। एक नहीं, सैकड़ों। पर केवल सन्दूक में कीड़ों का भोजन बनने के लिए। दरिद्र घर की लड़कियों में यही ऐब होता है। उनकी दृष्टि सदैव संकीर्ण रही है। न खा सकें, न पहन सकें, न दे सकें। उन्हें तो खजाना भी मिल जाय, तो यही सोचती रहेंगी कि खर्च कैसे करें। दरिया की सैर तो हुई, पर विशेष आनन्द न आया।

कई महीने तक आशा की मनोवृत्तियों को जगाने का असफल प्रयत्न करके लालाजी ने समझ लिया कि इसकी पैदाइश ही मुहर्रमी है। लेकिन फिर भी निराश न हुए। ऐसे व्यापार में एक बड़ी रकम लगाने के बाद वे उसमें अधिक-से-अधिक लाभ उठाने की वणिक-प्रवृत्ति को कैसे त्याग देते ? विनोद की नयी-नयी योजनाएँ पैदा की जातीं ग्रामोफोन अगर बिगड़ गया है,गाता नहीं, या साफ आवाज नहीं निकलती, तो उसकी मरम्मत करानी पड़ेगी। उसे उठाकर रख देना, तो मूर्खता है। इधर बूढ़ा महाराज एकाएक बीमार होकर घर चला गया था और उसकी जगह उसका सत्रह-अठारह साल का जवान लड़का आ गया था कुछ अजीब गँवार था, बिलकुल झंगड़, उजड्ड। कोई बात ही न समझता था। जितने फुलके बनाता, उतनी तरह के। हाँ, एक बात समान होती। सब बीच में मोटे होते, किनारे पतले। दाल कभी तो इतनी पतली जैसे चाय, कभी इतनी गाढ़ी जैसे दही। नमक कभी इतना कम कि बिलकुल फीकी, कभी इतना तेज कि नींबू का शौकीन। आशा मुँह-हाथ धोकर चौके में पहुँच जाती और इस डपोरशंख को भोजन पकाना सिखाती। एक दिन उसने कहा,

'तुम कितने नालायक आदमी हो जुगल। आखिर इतनी उम्र तक तुम घास खोदते रहे या भाड़ झोंकते रहे कि फुलके तक नहीं बना सकते ?'

जुगल आँखों में आँसू भर-कर कहता बहूजी, 'अभी मेरी उम्र ही क्या है ? सत्रहवाँ ही तो पूरा हुआ है !'

आशा को उसकी बात पर हँसी आ गयी। उसने कहा, 'तो रोटियाँ पकाना क्या दस-पाँच साल में आता है ?'

'आप एक महीना सिखा दें बहूजी, फिर देखिए, मैं आपको कैसे फुलके खिलाता हूँ कि जी खुश हो जाय। जिस दिन मुझे फुलके बनाने आ जायँगे, मैं आपसे कोई इनाम लूँगा। सालन तो अब मैं कुछ-कुछ बनाने लगा हूँ, क्यों ?'

आशा ने हौसला बढ़ाने वाली मुस्कराहट के साथ कहा, 'सालन नहीं, वो बनाना आता है। अभी कल ही नमक इतना तेज था कि खाया न गया। मसाले में कचौंधा आ रही थी।'

'मैं जब सालन बना रहा था, तब आप यहाँ कब थीं ?'

'अच्छा, तो मैं जब यहाँ बैठी रहूँ तब तुम्हारा सालन बढ़िया पकेगा ?'

'आप बैठी रहती हैं, तब मेरी अक्ल ठिकाने रहती है।'

आशा को जुगल की इन भोली बातों पर खूब हँसी आ रही थी। हँसी को रोकना चाहती थी, पर वह इस तरह निकली पड़ती थी जैसे भरी बोतल उँड़ेल दी गयी हो।

'और मैं नहीं रहती तब ?'

'तब तो आपके कमरे के द्वार पर जा बैठता हूँ। वहाँ बैठकर अपनी तकदीर को रोता हूँ।'

आशा ने हँसी को रोककर पूछा, क्यों, रोते क्यों हो ?
'यह न पूछिए बहूजी, आप इन बातों को नहीं समझेंगी।'

आशा ने उसके मुँह की ओर प्रश्न की आँखों से देखा। उसका आशय कुछ तो समझ गयी, पर न समझने का बहाना किया।

'तुम्हारे दादा आ जायँगे; तब तुम चले जाओगे ?'

'और क्या करूँगा बहूजी। यहाँ कोई काम दिलवा दीजिएगा, तो पड़ा रहूँगा। मुझे मोटर चलाना सिखवा दीजिए। आपको खूब सैर कराया करूँगा। 'नहीं, नहीं बहूजी, आप हट जाइए, मैं पतीली उतार लूँगा। ऐसी अच्छी साड़ी है आपकी, कहीं कोई दाग पड़ जाय, तो क्या हो ?' आशा पतीली उतार रही थी। जुगल ने उसके हाथ से सँड़सी ले लेनी चाही।

'दूर रहो। फूहड़ तो तुम हो ही। कहीं पतीली पाँव पर गिरा ली, तो महीनों झींकोगे।'

जुगल के मुख पर उदासी छा गयी।

आशा ने मुस्कराकर पूछा, 'क्यों, मुँह क्यों लटक गया सरकार का ?'

जुगल रुआँसा होकर बोला, 'आप मुझे डाँट देती हैं, बहूजी, तब मेरा दिल टूट जाता है। सरकार कितना ही घुड़कें, मुझे बिलकुल ही दुख नहीं होता। आपकी नजर कड़ी देखकर मेरा खून सर्द हो जाता है।'

आशा ने दिलासा दिया, 'मैंने तुम्हें डाँटा तो नहीं, केवल यही तो कहा, कि कहीं पतीली तुम्हारे पाँव पर गिर पड़े तो क्या हो ?'

'हाथ ही तो आपका भी है। कहीं आपके ही हाथ से छूट पड़े तो ?'

लाला डंगामल ने रसोई-घर के द्वार पर आकर कहा, 'आशा, जरा यहाँ आना। देखो, तुम्हारे लिए कितने सुन्दर गमले लाया हूँ। तुम्हारे कमरे के सामने रखे जायँगे। तुम यहाँ धुएँ-धक्कड़ में क्यों हलाकान होती हो ? इस लड़के से कह दो कि जल्दी महाराज को बुलाये। नहीं तो मैं कोई दूसरा आदमी रख लूँगा। महाराजों की कमी नहीं है। आखिर कब तक कोई रिआयत करे, गधो को जरा भी तमीज नहीं आयी। सुनता है जुगल, लिख दे आज अपने बाप को। चूल्हे पर तवा रखा हुआ था। आशा रोटियाँ बेलने में लगी थी। जुगल तवे के लिए रोटियों का इन्तजार कर रहा था। ऐसी हालत में भला आशा कैसे गमले देखने जाती ?

उसने कहा, 'जुगल रोटियाँ टेढ़ी-मेढ़ी बेल डालेगा।'

लालाजी ने कुछ चिढ़कर कहा, 'अगर रोटियाँ टेढ़ी-मेढ़ी बेलेगा, तो निकाल दिया जायगा !'

आशा अनसुनी करके बोली, 'दस-पाँच दिन में सीख जायगा, निकालने की क्या जरूरत है ?'

'तुम आकर बतला दो, गमले कहाँ रखे जायँ।'

'कहती तो हूँ, रोटियाँ बेलकर आयी जाती हूँ।'

'नहीं, मैं कहता हूँ तुम रोटियाँ मत बेलो।'

'आप तो ख्वामख्वाह जिद करते हैं।'

लालाजी सन्नाटे में आ गये। आशा ने कभी इतनी रुखाई से उन्हें जवाब न दिया था। और यह केवल रुखाई न थी, इसमें कटुता भी थी। लज्जित होकर चले गये। उन्हें ऐसा क्रोध आ रहा था कि इन गमलों को तोड़कर फेंक दें और सारे पौधों को चूल्हे में डाल दें। जुगल ने सहमे हुए स्वर में कहा, 'आप चली जायँ बहूजी, सरकार बिगड़ जायँगे।'